International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 05-04-2019; Accepted: 07-05-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 4; July 2019; Page No. 11-12

कबीर दर्शन में जीव का स्वरूप

सचिन मिश्र
हिन्दी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

अपनी ब्रह्म भावना में अद्वैतवाद से अनुप्राणित कबीर ने आत्मा तथा ब्रह्म को एकरूप कहा है। जीवात्मा और परमात्मा वस्तुतः एक ही है, किन्तु व्यावहारिक रूप में जीवात्मा शरीरबद्ध होने के कारण भिन्न प्रतीत होती है। ज्ञान द्वारा माया व भ्रम का निर्मूलन कर देने पर जीवात्मा और परमात्मा की स्थिति एक जैसी हो जाती है तथा इनमें प्रतीत होने वाली भिन्नता मिथ्या प्रमाणित हो जाती है। कबीर कहते हैं कि पत्ती–पत्ती में जीवात्मा है तथा मैं सब में हूँ। कबीर ने जीवात्मा को एक माना है। उनके अनुसार आत्मा एक है और वह सर्वव्यापी तत्व है। कुम्हार ने एक ही मिट्टी गूँथकर अनेक प्रकार के रूपों को सँवारा है, परन्तु उन सभी रूपों में वह एक ब्रह्म ही विद्यमान है। कबीरदास जी भी जानते हैं कि जीव कर्मबद्ध है, किन्तु उनका तर्क यह है कि आखिर जीव को कर्मबन्धन में डालने वाला भी तो वही है। वे कहते हैं कि जिन पंचतत्वों से शरीर बना है, उन तत्वों का आदि कारण भी वही है। उसी ने जीव को कर्मबन्धन में डाला है। वही सब में विद्यमान है। कबीर ने यह भी अनुभव किया था कि नामरूपात्मक प्राणियों में दीख पड़ने वाली अनेकता के अन्तर में आत्मतत्व का ऐक्य प्रवाह अन्तः सलिला की भाँति प्रवाहमान है। विभिन्न वर्ण वाली दस गायों को दूहा जाता है तो उनमें भिन्न–भिन्न प्रकार का रंग का नहीं, एक ही रंग का दूध निकलता है–

''पंच बरन दस दुहिए गाई, एक दूध देखौ पति आई।।''

जीव और ब्रह्म की तात्विक एकता स्वीकार करते हुए भी कबीर यह मानते हैं कि जीव अपने इस शुद्ध चेतन रूप को भूलकर विषयों में अनुरक्त है। ऐसे जीव को वे 'हद का जीव' कहते हैं। 'हद' का जीव अर्थात् देश–काल की सीमा में बंधा हुआ विषयोन्मुख जीव। ऐसे जीव से वे मुख भर बोलना भी नहीं चाहते। किन्तु जो 'बेहद' के जीव हैं, जो असीम तत्व में अनुरक्त हैं, उनसे वे अपने हृदय की बात प्रकट करने में संकोच नहीं करते। यह 'हद' का जीव ही भ्रम में पड़कर नाना प्रकार के वेश धारण करता है। यह अलक्ष्य को लक्षित करने में असमर्थ होकर अन्य संसारी जीवों का ही आश्रय ग्रहण करता है। परिणाम यह है कि न गोविन्द मिलते हैं, न उनकी ज्वाला बुझती है। यही संसारी जीव निरन्तर सुप्तावस्था में रहता है।

जीव की अद्वैतता के निरूपण में केवलाद्वैतवादी प्रतिबिम्बवाद का सहारा लेते हैं। प्रतिबिम्बवाद के अनुसार जिस प्रकार अनेक घड़ों में सूर्य का प्रतिबिम्ब अलग–अलग पड़ता है, पर वह सर्वत्र एक समान ही होता है, उसी प्रकार एक ही जीवात्मा भिन्न–भिन्न शरीरों में प्रतिबिम्बित हो रहा है। कबीरदास जी का इस सम्बन्ध में कथन है कि जैसे जल में एक व्यक्ति के अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार आत्मा एक है जो अनेक रूपों में दिखाई पड़ता है–

'ज्यूं जल में प्रतिबिंब, त्यूं सकल रामहि जॉर्णीज।''

ब्रह्मसूत्र में जीव को ब्रह्म से भिन्न बताया गया है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि जीव के लक्षण परमात्मा से भिन्न हैं। वह परमात्मा का प्रक्षेपण मात्र है। इन्द्रिय–बोध की दृष्टि से दोनों में अन्तर अवश्य है। जीव ब्रह्म जैसा है, किन्तु तत्वतः ब्रह्म नहीं है। जीव ज्ञाता है और ब्रह्म ज्ञेय है। जीव ध्याता है और ब्रह्म ध्येय है। दोनों में बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव है। जिस प्रकार प्रतिबिम्ब–बिम्ब से भिन्न नहीं है, उसी प्रकार अन्तरात्मा, परमात्मा से भिन्न नहीं है। जिस प्रकार घड़े के फूट जाने पर उसका जल, जल में ही समा जाता है, उसी प्रकार स्थूल–सूक्ष्म आदि उपाधियों के सर्वथा नष्ट हो जाने पर अन्तरात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है।

गीता के दूसरे अध्याय में जीवात्मा को नाशरहित और अमर कहा गया है। यह विभिन्न जन्मों में नये शरीर धारणा करता है। ''ईश्वर अंश जीव अविनाशी।'' इस प्रकार जीव को गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। जीवात्मा कर्ता है। वह शरीरधारी आत्मा है। गीता में आत्मा को अमर माना गया है, जीवात्मा की अमरता का उल्लेख करते हुए निम्नलिखित श्लोक में कहा गया है कि यह आत्मा न किसी काल में जन्मता है और न मरता है, यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है–

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।
न जायते म्रियते कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतो•यं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीर।।

जीवात्मा के विषय में गीता में और कहा गया है–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहित पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

जीवात्मा का नया शरीर धारण करना मनुष्य के नये वस्त्र धारण करने के समान है, गीता में कहा गया है कि जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार देही अर्थात् शरीर का स्वामी, आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीर धारण करती है–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरो•पराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

ईश्वर एक है परन्तु जीव अनेक हैं। ईश्वर अंशी है तो जीव अंश। स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये जीव के तीन शरीर हैं। जब जीवात्मा नये भौतिक शरीर में प्रविष्ट होता है, तब सूक्ष्म और कारण शरीर को भी साथ ले जाता है। शरीर के नाश होने पर इसका नाश नहीं होता, क्योंकि यह नित्य, शाश्वत एवं पुरातन है। जीवात्मा स्वयं अविकार है, वह अच्छेद्य है, अदाह्य, अक्लेद्य तथा अशोष्य है, वह नित्य सर्वव्यापी, स्थिर, अचल तथा सनातन है। एक शरीर में जीव अनेक न होकर एक ही है। गीता में इस विषय पर एक उपमा दी गयी है–

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्सनं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।

संत कबीर ने जीवात्मा की कई कोटियों का वर्णन किया है। माया के वशीभूत जीव को उन्होंने अज्ञानी जीव कहा है और

बताया है कि अज्ञानी पुरुष को माया अपने मोह पाश में जकड़ लेती है, परन्तु जिज्ञासु जीव की बुद्धि में ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होने पर वह अपने स्वरूप का चिन्तन करता है। जीवन्मुक्त साधक जीव निज–स्वरूप में निमग्न रहता है तथा उसे अद्वैत की प्राप्ति होती है। कबीर ने जीवतत्व को निर्गुण और निराकार माना है। कहीं–कहीं उसके साकार रूप की अवतारणा भी हो गयी है। साकार रूप में वर्णन करते हुए वे उसे दीपक की ज्योति के समान बताते हैं और उसे ही व्यक्ति का जीवन कहते हैं। मनुष्य का शरीर तो एक मन्दिर के समान है जो आत्मारूपी ज्योति से प्रकाशमान रहता है और जिसके बुझते ही मानव–जीवन का अन्त हो जाता है।

कबीर ने जीव को कहीं पवन तो कहीं प्राणरूप बताया हैं इसी प्रकार उन्होंने आत्मा को वाणी, शब्द, मन, आनन्द आदि रूपों में चित्रित किया हैं डॉ0 बलदेव उपाध्याय अद्वैत वेदान्त के अनुसार जीव तत्व की चर्चा करते हुए कहते हैं– ''शंकराचार्य के वेदान्त के अनुसार शरीर तथा इन्द्रिय समूह के अध्ययन और कर्मफल के भोक्ता आत्मा को जीव कहते हैं।'' दूसरे शब्दों में कहा गया है कि परब्रह्म ही उपाधि सम्पर्क से जीव भाव में विद्यमान रहता है। डॉ0 रघुवंश ने लिखा है कि– ''जीव इस संसार में दस दिन अपनी नौबत बजाकर उसी नगर तथा गली को सदा के लिए त्यागकर चल देता है। सांसारिक वैभव के बीच मनुष्य ऐश्वर्य का उपभोग करता है। पर हरि नाम के बिना जन्म लेकर सब कुछ हार जाता है।''

कबीरदास के जीवतत्व से सम्बन्धित विचारों पर चर्चा करते हुए लिखा गया है– ''कबीर द्वारा निपरूपित जीवात्मा के प्रतिपादन में गीतादर्शन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वह अशोच्य, अदाह्य, अछेद्य है। वह अनाम, अरूप, अज और अविनाशी है। ब्रह्म से बाहर उसकी कुछ भी सत्ता नहीं है।''

कबीर जीव को जगत कहते हुए कहते हैं कि हे जीव ! जागो इस संसार में सोने से काम नहीं चलेगा। यहाँ अनेक विषय विकार चोरी करने के लिए तत्पर हैं। निरन्तर जागृत रहकर पहरा देने से ही इनसे बचा जा सकता है।

यदि जागृत न रहा गया तो काल रूपी अहेरी पाप–पुण्य के जाल में फँसाकर सभी जीवों को अपना शिकार बना लेगा। जीव के लिए बचने का एक ही उपाय है कि वह राम की भक्ति में लीन रहे।

सन्दर्भ

1. पंच ततु मिलि काइआ कीनी ततु कहा ते कीन रे।
   करन बंधु तुम जीउ कहत हौ करमहि किनि जीउ दीनु रे।
   हरि महि तनु है तन महि हर है सरब निरंतन सोई रे।
   संत कबीर, राग गौड़, पद–3, पृष्ठ– 166
2. सं0 श्यामसुन्दर दास, कबीर–ग्रंथावली, पद– 53
3. कबीर हद के जीव सूं हित करि मुखाँ न बोलि जे लागे बेहद सूं तिति सूं अंतर खोलि ।। चितावणी कौ अंग, क0ग्र0, साखी–50
4. कबीर भर्म न भागा जीव का अनंतहि धरिया भेष। (वही, साखी–19, पृष्ठ– 78)
5. कबीर जीव बिलंव्या जीव सौ, अलष न लषिया जाईगोव्यंद मिलै न झल बुझे, रही बुझाई बुझाई।। – वही, चाणक को अंग, साखी–1, पृष्ठ– 40
6. वही, पद– 53
7. सिंह वासुदेव, कबीर एक नया मूल्यांकन, पृष्ठ– 45
8. ज्यों बिंबहि प्रतिबिम्ब समानां उदकि कुम्भ बिगरानां।कहै कबीर जांनि भ्रम भागा तउ मन सुन्नि समानां।। कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दर दास, पद– 179, पृष्ठ– 348
9. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/19
10. वही, 2/20
11. वही, 2/23
12. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/22
13. वही, 2/24
14. वही, 13/33
15. मन्दिर मांहि झपूकती, दीवा कैसी जोति।
    हंस बटाऊ जलि गया, काढ़ौ घर की छोति।।
    – दास श्यामसुन्दर, क0ग्रं0, काल कौ अंग, साखी–1
16. उपाध्याय बलदेव, भारतीय दर्शन, पृष्ठ– 123
17. डॉ0 रघुवंश, कबीर– एक नई दृष्टि, पृष्ठ– 78
18. डॉ0 रमेशचन्द्र एवं डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक, कबीर–वचनामृत, पृष्ठ– 64
19. जागि रे जीव जागि रे।
    चोरन कौ डर बहुत कहत हैं, उठि–उठि पहरै लागि रे।
    –कबीर ग्रन्थावली, रागभैरु, प– 25, पृष्ठ– 355
20. तीन लोक भौं पींजरा, पाप–पुण्य भे जाल।
    सकल जीव सावज भये, एक अहेरी काल।।– सिंह शुकदेव, बीजक, पृष्ठ– 150